ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 236-237

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

वर्ण व्यवस्था पर बौद्ध दृष्टिकोण

डॉ0 सुनील कुमार चतुर्वेदी

ओम उच्च शिक्षा संस्थान, गोपीगंज, भदोही (उ0प्र0) भारत

Received-03.03.2023, Revised-10.03.2023, Accepted-15.03.2023 E-mail: shridharcsc@gmail.com

सारांशः ***बौद्ध साहित्य में उल्लिखित वर्ण, जाति का स्वरूप पूर्ण रूप से ब्राह्मण साहित्य में वर्णित वर्ण व्यवस्था संबंधी विधि–विधानों पर थी आधारित है, अंतर है यदि कहीं तो वह सिर्फ दृष्टिकोण मात्र का, वस्तुस्थिति का नहीं। बौद्धों ने यदि वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है, तो वह सिर्फ एक वर्ग की जन्मजात उच्चता अथवा दूसरे वर्ग की जन्मजात निम्नता का है। उनके विचार में किसी वर्ण में जन्म मात्र पाने से व्यक्ति उस वर्ण का सदस्य नहीं हो जाता, उसके लिए तो अनिवार्य कर्म की आवश्यकता है। मज्झिम निकाय के अस्सलायन सुत्त में भगवान बुद्ध द्वारा अस्सलायन को समझाया गया है कि जिस प्रकार भिन्न–भिन्न जाति के व्यक्तियों द्वारा भिन्न–भिन्न लकड़ियों से उत्पादित अग्नि समान होती हैं। उसी प्रकार सभी मनुष्य समान होते हैं जन्मजात प्रधानता अथवा हीनता नहीं होती है।***[1]

कुंजीभूत शब्द– जन्मजात उच्चता, जन्मजात निम्नता, मज्झिम निकाय, अस्सलायन सुत्त, पारलौकिक आनंद, सत्कर्म।

मधुर सुत्त में भी महाकच्चायन की वार्ता के अनन्तर भगवान बुद्ध यही कहते हैं कि चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किसी भी वर्ण का व्यक्ति हो उसके लिए किसी भी प्रकार से जीवन में भौतिक सफलता, पारलौकिक आनंद और दंड न्यायालयों के निर्णय तथा सन्यासियों के प्रति व्यक्त एकरूप आदर भाव को प्रभावित नहीं कर सकती।[2] कर्म के ही मापदंड से तथागत ने सुत्तनिपात में कहा है कि कोई भी व्यक्ति न तो जाति से ब्राह्मण होता है और ना ही जाति से वृषल होता है।[3] सीलविमंस जातक में वर्णन आया है कि जाति और वर्ण अहंकारोत्पादक है। शील ही मनुष्य का सर्वोच्च गुण है। इसके द्वारा शूद्र और चांडाल भी द्वि जातियों के समान प्रतिष्ठिता हो सकते हैं। परलोक के लिए जन्म अथवा सजातीयता व्यर्थ है। उसके लिए शील अथवा सत्कर्म ही प्रमाण है।[4] क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शुद्र अथवा चांडाल कोई भी वर्ण हो सदाचार के माध्यम से वह निर्वाण प्राप्त कर सकता है। किसी भी जाति के विषय में सदाचारी व्यक्ति जिज्ञासु नहीं रहता। वह उसके सदाचार से ही प्रभावित होता है।[5] इस प्रकार के संपूर्ण कथन बौद्धों द्वारा ब्राह्मण विरोधी दृष्टिकोण को ही अभिव्यक्त करते हैं।

बौद्ध साहित्य के अवलोकनोपरान्त यह पुष्ट हो जाता है कि इस समय तक ब्राह्मणों द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था, जातिगत रूप ले चुकी थी तथा पूर्ण रूप से समाज उसके अधीन हो चुका था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के मध्य भली–भांति व्यवहारिक भेद स्थापित हो चुका था। ऐसी स्थिति में हम पाते हैं कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों द्वारा यह दावा पेश किया जाना कि हम उच्चतर हैं तथा पौधों द्वारा उस दावे का खंडन कर क्षत्रिय की उच्चता का प्रतिपादन करना जैसा दीघनिकाय के अम्बट्ठ सुत्त से स्पष्ट होता है कि किसी भी दृष्टि से विचार करने पर क्षत्रिय ही उच्चतर है।[6] यह स्पष्ट करता है कि यह विरोध ब्राह्मणों के उस दावे का ही खंडन है जो वे प्रारंभ से करते चले आए हैं अन्यथा यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वर्ण व्यवस्था के दृष्टिकोण से बौद्ध मत क्षत्रियों का पक्षपाती था। स्वयं बौद्धों की उप चेतना में भी जाति व्यवस्था का प्रभाव बहुत कुछ विद्यमान रहा। कहीं–कहीं हम भगवान बुद्ध के समक्ष भिक्षुओं के मुख से जातिवाद संबंधी अवधारणाओं की स्वी.ति पाते हैं। तित्तर जातक में जब भगवान बुद्ध भिक्षुओं से यह प्रश्न करते हैं कि कौन व्यक्ति अग्रगण्य है, तो कोई व्यक्ति क्षत्रिय का नाम लेता है, कोई ब्राह्मण का और कोई गहपति का।[7] इन तीनों वर्णों के सदस्य समाज में समादर के पात्र थे। यद्यपि यह भगवान बुद्ध के उद्देश्यों के प्रतिकूल था। भगवान बुद्ध भिक्षु संघ को संबोधित करते हुए कहते हैं, कि– 'हे भिक्षुओं ! जिस प्रकार महानदियॉ सागर में मिलकर एकाकार हो जाती हैं, उसी प्रकार चारों वर्णों के सदस्य तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म के नियमानुसार प्रव्रजित होकर भूल जाते हैं कि हमारा अमुक वर्ण था, उनकी एकमात्र संज्ञा रह जाती है श्रमण।[8] इस प्रकार के प्राप्त संदर्भों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान बुद्ध के दृष्टिकोण में जन्मना उच्चता या निम्नता के विचार अमान्य थे।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में 3 शब्दों वर्ण, जाति और कुल का अनेकानेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। अधिकांशतः ये समानार्थ के द्योतक है।[9] इनसे समाज के 4 वर्ग का ही बोध होता है। बौद्ध व्यवस्था भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शुद्र के चतुर्वर्णो को परोक्ष रूप से स्वीकृत करती हैं।[10] वशिष्ठ सुत्त का स्पष्ट कथन है कि जन्म से ही कोई ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण नहीं होता है। उनके लिए कर्म ही प्रधान है। गो पालन का अनुसरण करने वाला व्यक्ति जन्म मात्र से ब्राह्मण नहीं हो सकता। वास्तव में वह वैश्य है, ब्राह्मण होने के लिए विशिष्ट कर्म की आवश्यकता है।[11] इस प्रकार के कथनों से बौद्धों का कर्म के आध ाार पर ही जाति निर्धारण करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार इन सब तथ्यों से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि सामान्यतः बुद्ध का दृष्टिकोण सभी वर्गों के लिए समानता का था, जिसमें कर्म की प्रधानता ही वर्णो का बंटवारा करने में अंतिम रूप में निर्णायक है, न कि जाति। अतः परम्परागत

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

प्रवाहमान व्यवस्था का ही उन्होंने समर्थन किया तथा इस वर्ण व्यवस्था में व्याप्त धर्मजन्य कुरीतियों के निवारण हेतू ही उन्होंने इस पर कुठाराघात किया है, जहाँ तक ब्राह्मण वर्ण के विरोध की बात है तो हम उन्हें वास्तविक ब्राह्मण का विरोध करते हुए कहीं नहीं पाते हैं, अपितु उनमें व्याप्त जाति अहंकारता के जड़गत भावनाओं को ही दूर करने का प्रयास उनके द्वारा जगह–जगह किया गया तथा वास्तविक ब्राह्मण की परिभाषा बतलाई गई। उनके कर्मगत वर्ण व्यवस्था के दृष्टिकोण से यहाँ तक कि चाण्डालों एवं पुक्कुसो जैसी हीन जातियों को भी मोक्ष का अधिकारी माना गया। स्वयं भगवान बुद्ध कई स्थानों पर कहते हैं कि कर्म के अनुसार ही व्यक्ति का वर्ण किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मज्झिम निकाय, भाग–2, अस्सलायन सुत्त, पृ0 151।
2. जे0आर0ए0एस0–1894, पृ0 349
3. सुत्तनिपात, वसलसुत्त, पृ0 27
4. जातक–3, पृ0 104–05
5. जातक–4, पृ0 303
6. दीघनिकाय–3, अम्बट्ठसुत्त
7. जातक 1, पृ0 217
8. चुल्लवग्ग, 9.1.4
9. बी0सी0ला0, कान्सेप्ट्स आफ बुद्धिज्म, पृ0 11
   विनय पिटक, 2, पृ0 239, चत्तारों में वण्ण खत्तिया वेस्सा सुद्दा।
   3, पृ0 184, चत्तारि, कुलानि खत्तियकुलं ब्राह्मण कुलं वैस्सकुलं सुद्दकुलं ।
10. कण्णकथाल सुत्त, जे0आर0ए0एस0–1894, पृ0 342, चल्लवग्ग, 6.1.4।
11. एस0बी0ई0, 10, पृ0 108

*****